दिसम्बर 2021

पैरवी संवाद

पब्लिक एडवोकेसी इनीशिएटिव्स फ़ॉर राइट्स एण्ड वैल्यूज़ इन इण्डिया

कॉप 26: अपेक्षाएं, परिणाम और भारत की कूटनीति

अजय झा

औद्योगिक और समृद्ध देशों ने वायुमंडलीय स्थान पर कब्जा जारी रखा है और छोटे देशों के लिए कोई विकास स्थान नहीं बचा है।

कॉप 26 चुनौतीपूर्ण था। इस कॉप में पेरिस रूल बुक को अंतिम रूप देने के लिए कुछ अहम मुद्दों पर फैसला लिया जाना था। आर्टिकल 6- सहकारी तंत्र (बाजार और गैर-बाजार आधारित दृष्टिकोण सहित), एनडीसी के लिए समान समय सीमा और उन्नत पारदर्शिता तंत्र के लिए रिपोर्टिंग प्रारूप/तालिकाएं आदि मुद्दे थे, जिन पर बात की जानी थी। इसके अलावा अनुकूलन पर वैश्विक लक्ष्य व हानि और क्षति (वित्तीय सुविधा का निर्माण) के संबंध में इस कॉप से अपेक्षाएं भी थीं। जलवायु कोष और अनुकूलन कोष भी बड़े मुद्दे थे। हालांकि, सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा, जो विकसित और विकासशील देशों के बीच सहयोग के लिए महत्वपूर्ण था, जलवायु कोष और 100 अरब अमेरिकी डॉलर का वितरण था।

हालांकि, सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा शमन महत्वाकांक्षा पर औद्योगिक देशों की प्रतिक्रिया को देखना (और उम्मीद करना) था। हम सभी जानते हैं कि कॉप 26 से पहले प्रतिबद्ध एनडीसी 1.5 डिग्री से नीचे तापमान में वृद्धि को रोकने में असमर्थ हैं और उत्सर्जन को कम करने की उम्मीदों के विपरीत, 2030 तक वैश्विक उत्सर्जन में 16 प्रतिशत की वृद्धि होने की संभावना है। हमने कॉप 26 से 1.5 डिग्री के लक्ष्य को बचाने के लिए त्वरित प्रतिक्रिया की उम्मीद की थी। हाल ही में आईपीसीसी रिपोर्ट (डब्ल्यूजी1; फिजिकल साइंस बेसिस) द्वारा भी इसकी त्वरित आवश्यकता को रेखांकित किया गया है, जिसमें कड़ी चेतावनी दी गई है और कहा गया है कि तीन साल पहले 2018 में 1.5 डिग्री पर आईपीसीसी की विशेष रिपोर्ट में 2040 का जो अनुमान लगाया गया था उसके बहुत पहले 2030 के दशक में ही 1.5 डिग्री के लक्ष्य का उल्लंघन किया जा सकता है।

तथाकथित 'प्रकृति आधारित समाधान' में विशेष रुचि रखने वाले हम जैसे लोग नेचर एक्शन, नेचर पॉजिटिव एक्शन, प्रकृति समाधान, स्थायी भूमि प्रबंधन आदि विषयों पर किसी विकास के बारे में भी सतर्क थे क्योंकि उनका परस्पर उपयोग किया जा रहा है। यहां हमारी सबसे बड़ी चिंता यह है कि प्रकृति आधारित समाधानों के लिए मानक परिभाषा और सिद्धांतों की आवश्यकता है। वर्तमान में वे पूरी तरह से 'स्वघोषित' हैं। उन्हें यूएनएफसीसीसी, यूएनसीबीडी, यूएनईपी, एसडीजी आदि सभी मंचों पर इतनी मजबूती और जोर से प्रस्तुत किया जा रहा है कि वे अन्य सभी दृष्टिकोणो/प्रयासों को बदलने के कगार पर हैं। प्रकृति आधारित समाधानों के साथ नेट जीरो के सम्मिश्रण में वनों और जैव विविधता के साथ ही मूल निवासियों के लिए विनाशकारी नुस्खा बनाने के सभी तत्व हैं। हम यूएनईए में प्रकृति आधारित समाधानों के इस द्वेषपूर्ण दृष्टिकोण के खिलाफ लड़ते रहे हैं। हालांकि, केवल यूरोपीय संघ ने 'प्रकृति आधारित समाधानों पर साझा समझ की आवश्यकता' के बारे में बात करके प्रतिक्रिया दी है।

कॉप 26 के प्रमुख परिणाम

- **1.5 डिग्री के लक्ष्य का सम्मानः** 1.5 में विश्वास रखना अच्छा है। 2 डिग्री कई विकासशील छोटे द्वीपीय देशों और अन्य देशों के लिए मौत की

सजा है। बारबाडोस के प्रधान मंत्री मिया मोटले ने इस बात को बहुत प्रभावी ढंग से कहा। इस कॉप से पहले बहुत से लोगों/देशों/वैज्ञानिक समुदाय ने 1.5 के लक्ष्य पर उम्मीद छोड़ दी थी और इसे 'पीछे छूटा हुआ' मान लिया गया था। हालाँकि, कॉप 26 ने इस लक्ष्य को जीवित रखने के लिए अच्छा प्रयास किया, लेकिन कहा जा सकता है कि यह बहुत कमजोर धड़कन के साथ जिंदा है। इसे मजबूत करने के लिए बहुत काम बाकी है!

- **कोयले और अन्य जीवाश्म ईंधन को छोड़ने की जरूरतः** प्रमुख निर्णय में कोयले और जीवाश्म ईंधन को देखना अच्छा है (पेरिस समझौता या तो इसका उल्लेख करने में विफल रहा या इसका उल्लेख करने के लिए सहमत नहीं हो सका)। हालाँकि, केवल 40 देशों ने 2030 तक कोयले को समाप्त करने के लिए हस्ताक्षर किए (विकसित देश 2030 तक, विकासशील देश 2040 तक) और सूची को पहले बने 'पावरिंग पास्ट द कोल अलायंस' में से संख्या शामिल कर बड़ा किया गया। हालाँकि, अमेरिका, चीन, ऑस्ट्रेलिया, और भारत के बिना इस प्रतिबद्धता के मायने समझना मुश्किल है।
- **अनुकूलन पर वैश्विक लक्ष्यः** वैश्विक अनुकूलन लक्ष्य पर दो वर्षीय ग्लासगो शर्म-अल-शैख कार्य योजना एक अच्छा कदम है, हालांकि करने के लिए बहुत कुछ बाकी है।
- **पेरिस एग्रीमेंट रूल बुकः** आर्टिकल 6 के बाहर का अधिकांश कार्य तकनीकी था और अच्छा था कि इसे पूरा किया गया। आर्टिकल 6 को भी अंतिम रूप दिया गया था, लेकिन अनुकूलन निधि को आर्टिकल 6.2 से जोड़ने में विफलता ने इसे कमजोर बनाएगी।
- **वनों की कटाई और भूमि प्रबंधन पर ग्लासगो घोषणाः** यह स्वागतयोग्य समझौता है लेकिन इसे पिछली ऐसी घोषणाओं (आइची लक्ष्य, न्यूयॉर्क घोषणा, 2014) से बेहतर कार्य करना चाहिए। कुछ वित्तपोषण होना भी अच्छा है (19.2 बिलियन के साथ मूल निवासियों के लिए 1 बिलियन अमेरिकी डॉलर)। यह महत्वपूर्ण है कि वन विनाशकारी परियोजनाओं में निवेश को भी रोका गया है। यह देखना अच्छा होगा कि वनों की कटाई को रोकने के वास्तविक प्रयासों में निवेश, स्थानीय जरूरतों के साथ विकेंद्रीकृत निर्णय लेने और समुदायों के साथ सामूहिक स्वामित्व से जुड़ा हुआ है। यह बेहतर होगा कि पश्चिमी देश लकड़ी की पट्टिकाओं (वुड पैलेट्स) की अपनी मांग को भी कम कर दें, जो कि यूरोपीय संघ के कई देशों के नवीकरणीय ऊर्जा प्रोफाइल का महत्वपूर्ण हिस्सा है।
- **मीथेन प्रतिज्ञाः** अच्छा है कि देशों ने उत्सर्जन कम करने के अपने प्रयास में मीथेन को शामिल किया है। यह बहुत अधिक महत्वाकांक्षी हो सकता था ताकि यह वर्तमान में 50 मीट्रिक टन के मुकाबले 2030 तक 120-130 मीट्रिक टन कम करने में सक्षम हो सकता। इसमें नाइट्रस ऑक्साइड को भी शामिल कर लेते तो अच्छा होता!
- **परिवहन उत्सर्जनः** 2030 तक आईईसी यात्री कारों, ट्रकों और बसों को समाप्त करने की प्रतिबद्धता स्वागत योग्य है, हालांकि बहुत कम देशों ने यह प्रतिबद्धता जताई है।
- अमेरिका चीन सहयोग और भारत द्वारा न्यूजीलैंड प्रतिबद्धता का स्वागत है। भारत ने चुनौतीपूर्ण प्रतिबद्धताएं की हैं, और अब समुचित वित्त और प्रौद्योगिकी मुहैया कराने की जिम्मेदारी औद्योगिक देशों पर है। हालाँकि, अंतरराष्ट्रीय फलक से अधिक, भारत को राष्ट्रीय या घरेलू स्तर पर ऊर्जा पहुंच, चरम जलवायु घटनाओं से भेद्यता को कम करने और वायु प्रदूषण को आपात स्थिति मानते हुए कम करने पर जोर देने की आवश्यकता है।

ये परिणाम, एक तरह से ग्लासगो कॉप 26 के रक्षक हैं। अन्यथा, अनुकूलन वित्त, जलवायु वित्त और शमन पर लगभग कोई प्रगति नहीं हुई है। इनमें से हरेक मुद्दा विकासशील देशों के लिए महत्वपूर्ण हैं और उनमें से कई निराश थे और केवल 'समझौता और एकजुटता की भावना में' कॉप के अंतिम परिणाम से सहमत हुए।

भारत और चीन बलि का बकरा

कॉप 26 के समापन पर पूरा पश्चिमी मीडिया इस बात से अचंभित था कि कैसे भारत और चीन ने परिणाम और ग्लासगो संधि को कमजोर किया है। अंतिम क्षण में भारत ने कॉप अध्यक्ष से 'कोल फेज आउट' को 'कोल फेज डाउन' से बदलने के लिए कहा। यह एक छोटा-सा महत्वहीन तकनीकी परिवर्तन था, क्योंकि अंततः सभी को कोयले को छोड़ना पड़ेगा। और ऐसा केवल भारत ही नहीं चाहता था बल्कि चीन, ईरान, वेनेजुएला, क्यूबा और संयुक्त राज्य अमेरिका सहित कई अन्य देश भी पाठ में यह बदलाव चाहते थे। शाब्दिक परिवर्तनों में कोयले और अकुशल जीवाश्म ईंधन सब्सिडी को चरणबद्ध तरीके से कम करने के संदर्भ में 'देशों के लिए लक्षित समर्थन...' जैसे शब्द शामिल करना भी था, जो पहले शामिल नहीं थे। हालाँकि, पश्चिमी मीडिया में व्यापक रूप से रिपोर्ट किया गया कि 'भारत अवरोधक है', 'भारत ने इसे कमजोर बनाने के लिए परिणाम की भाषा को हलका कर दिया' आदि। यह अत्यंत पक्षपाती रिपोर्टिंग है। हालाँकि, भारत ने एक सुस्पष्ट कूटनीतिक त्रुटि की। भारतीय मंत्री कॉप अध्यक्ष से पाठ को बदलने के लिए कहने के बजाय इसके लिए या तो अन्य देशों के साथ एक गुट बना सकते थे, जो कि सामान्य अभ्यास है, या फिर चीन से बदलाव के लिए कहने को कह सकते थे। भारतीय मंत्री द्वारा भाषा में बदलाव की मांग करने वाली छवि अंतरराष्ट्रीय मीडिया में निश्चित रूप से लंबे समय तक रहेगी।

विश्लेषण और निष्कर्ष

कॉप 26 शुरू होने से पहले ही विफल हो गया था। शमन, अनुकूलन और वित्त कॉप की सफलता के लिए तीन व्यापक मुद्दे या संकेतक थे। जलवायु वित्त विश्वास का मुद्दा बन गया था और कॉप अध्यक्ष का यह कहना कि 2023 से पहले 100 बिलियन अमेरिकी डॉलर नहीं दिया जा सकता, एक खराब शुरुआत थी। कॉप विश्वास के इस प्रारंभिक

नुकसान से उबर नहीं सका। प्रमुख निर्णय अनुकूलन वित्त को 2025 तक दोगुना करने की बात करता है, जो कि प्रति वर्ष अधिकतम 10-15 बिलियन अमेरिकी डॉलर की वर्तमान दरों को देखते हुए भविष्य में कोई अर्थपूर्ण वित्त नहीं है।

शमन के मामले में औद्योगिक और समृद्ध देशों ने वायुमंडलीय स्थान पर कब्जा करना जारी रखा है और छोटे देशों के लिए कोई विकास स्थान नहीं बचा है। 7 ऐतिहासिक प्रदूषकों (यूएस, यूके, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, जापान, रूस और यूरोपीय संघ 27) का 1870-1989 में कुल कार्बन उत्सर्जन में 76 प्रतिशत योगदान था, यह 1990-2019 में 46 प्रतिशत था और 2020-2030 के समय में यह 27 प्रतिशत होगा। यदि 1870 से 2030 तक के उत्सर्जन प्रोफाइल को देखें तो 7 ऐतिहासिक प्रदूषक आधे से अधिक वायुमंडलीय स्थान पर अपना कब्जा जारी रखेंगे! आज के रुझानों के अनुसार, 2030 में प्रति व्यक्ति उत्सर्जन ऑस्ट्रेलियाई के लिए 11.1 टन, अमेरिकियों के लिए 9.4 टन, कनाडाई के लिए 8.7 टन, यूरोपीय लोगों के लिए 4 टन (ब्रिटिश लोगों को छोड़कर), चीनीयों के लिए 8 टन और भारतीयों के लिए 3 टन और मोरक्कोवासियों के लिए 0.6 टन होगा। यह इतिहास को फिर से दोहराना है, न कि समानता लाना!! अगर हमारे पास दुनिया को उबारने का कोई मौका है, तो वह यह कि इक्विटी के बारे में बात करें और 1.5 डिग्री लक्ष्य को बचाएं। यूके, यूएस, ऑस्ट्रेलिया, कनाडा, रूस, जापान और यूरोपीय संघ 27 को 2030-2035 तक नेट जीरो का हासिल करना चाहिए और अन्य बड़े देशों को 2050 तक यह लक्ष्य हासिल करना चाहिए। तभी छोटे देशों के लिए विकास की जगह होगी। इसके बजाय सम्मेलन की मामूली उपलब्धि/विफलता का दोष देने के लिए कॉप अध्यक्ष और कई देशों को भारत के रूप में एक अच्छा बलि का बकरा मिला। हमारे पास इतना समय नहीं है कि हम साल दर साल इन परिणामों में सुधार की उम्मीद कर सकें।

भागीदारी के मामले में भी यह कॉप सबसे अधिक बहिष्करणपूर्ण था। अधिकांश सीएसओ प्रतिभागियों के लिए कॉप 26 मेजबानों के दावों के विपरीत था। यूके सरकार सबसे बहिष्करणकारी थी। कॉप से पहले की अनिश्चितता, पीएलएफ की नई जरूरतें और टेस्ट की प्री बुकिंग, हर रोज टेस्टिंग और रिपोर्टिंग का झंझट आदि काफी परेशानियां थीं। इसके साथ ही बेतरतीब आयोजन स्थल और पहुंचने की मार्ग-योजना थी जो आसानी से समझ में नहीं आ रही थी, उद्घाटन के कुछ दिन तक प्रवेश आदि के लिए लंबी कतारें थीं। कोटे में कमी, साइड इवेंट और प्रदर्शनी के पंजीकरण के लिए बहुत चुनौतीपूर्ण स्थितियों ने भी बहिष्कृत महसूस कराया। ब्लू जोन में अटेंडेंस कैप (10,000 लोगों के अंदर प्रवेश करने पर नो एंट्री) ने सैकड़ों लोगों को ब्लू जोन के बाहर इंतजार करने के लिए मजबूर कर दिया। हालाँकि, सबसे बड़ा बहिष्करण वार्ता में भाग लेने में था जहाँ प्रत्येक कांस्टिट्युएंसी को केवल कुछ ही पास दिए गए थे। साइड इवेंट्स के लिए जगह की कमी के कारण कई इवेंट ऑनलाइन आयोजित किए गए और यहां तक कि आयोजक (वक्ताओं को छोड़कर) साइड इवेंट में प्रवेश नहीं कर पाए। यह लंबे समय तक याद किया जाएगा।

■

ऑनलाइन शिक्षा में समता, समावेशन और गुणवत्ता पर युवा संवाद

16 दिसंबर 2021 को सामाजिक बहिष्कार और समावेशी नीति अध्ययन केंद्र (CSSEIP), सामाजिक विज्ञान संकाय, बीएचयू, वाराणसी के सहयोग से पैरवी द्वारा युवा संवाद का आयोजन किया गया। शिक्षा में ऑनलाइन कक्षाओं और डिजिटल प्रौद्योगिकी के उपयोग की ओर धक्का महामारी से पहले का है। लेकिन महामारी-प्रेरित प्रतिबंधों के कारण भौतिक बैठकों के बजाय ऑनलाइन गतिविधियों पर अधिक से अधिक सार्वजनिक ध्यान आकर्षित किया है।

जुलाई 2020 में सरकार द्वारा घोषित नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में अन्य बातों के साथ-साथ शिक्षा में गेम-चेंजर के रूप में 'ऑनलाइन टूल' का प्रचार किया गया है और इसे अपनाने को प्रोत्साहित किया गया है। सवाल उठता है कि क्या ऑनलाइन शिक्षा टिकाऊ है? क्या भारत की शिक्षा प्रणाली ऑनलाइन प्रणाली में स्विच करने के लिए तैयार है? ऑनलाइन शिक्षा में समता, समावेशन और गुणवत्ता के प्रश्न को कैसे संबोधित किया जाए? युवा संवाद में इन मुद्दों पर चर्चा की गई। चर्चा में लगभग 100 शिक्षाविदों, शोधकर्ताओं और नागरिक समाज संगठनों के सदस्यों ने भाग लिया। छात्रों ने अपने अनुभव साझा किए और चिंता व्यक्त की। उन्होंने मांग की कि सरकार को विश्वविद्यालय के प्रत्येक गरीब छात्र को एक लैपटॉप प्रदान करना चाहिए क्योंकि मोबाइल फोन के साथ ऑनलाइन कक्षाएं अस्थिर हैं। केंद्र के सहायक निदेशक डॉ. अमरनाथ पासवान ने चर्चा का संचालन किया।

स्वास्थ्य का अधिकार बने मौलिक अधिकार

दीनबंधु वत्स

स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार की गारंटी देने वाले वैधानिक ढांचे की अनुपस्थिति को भारत में कमजोर सार्वजनिक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण कारणों में से एक माना जाता है।

स्वास्थ्य हमारे जीवन का अभिन्न अंग है। हमारे जीवन का अस्तित्व ही हमारी स्वास्थ्य सेवाओं की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। 'हेल्थकेयर' विकास के महत्वपूर्ण संकेतकों में से एक है। गुणवत्तापूर्ण स्वास्थ्य सेवाओं के अभाव में लोगों को बहुत अधिक कीमत चुकानी पड़ती है। उच्च गुणवत्ता वाली स्वास्थ्य प्रणालियों पर सितंबर 2018 में प्रकाशित द लांसेट ग्लोबल हेल्थ कमीशन की रिपोर्ट के अनुसार, 'हर साल प्रति 100,000 में लगभग 122 भारतीय देखभाल की खराब गुणवत्ता के कारण मर जाते हैं। खराब देखभाल गुणवत्ता के कारण भारत की मृत्यु दर ब्राजील (74), रूस (91), चीन (46) और दक्षिण अफ्रीका (93) और यहां तक कि इसके पड़ोसी देश पाकिस्तान (119), नेपाल (93), बांग्लादेश (57) और श्रीलंका (51) से भी बदतर है।'

स्वास्थ्य सेवा तक अपर्याप्त पहुंच से अधिक मौतें देखभाल की खराब गुणवत्ता के कारण होती हैं। 2016 में देखभाल की खराब गुणवत्ता के कारण 16 लाख भारतीयों की मृत्यु हुई, वहीं स्वास्थ्य सेवाओं का उपयोग न करने के कारण लगभग 8 लाख लोगों की मौत हुई। हर साल लगभग 24 लाख भारतीय उपचार योग्य स्थितियों में मर जाते हैं।

भारत में सार्वजनिक स्वास्थ्य पर कम खर्च अन्य अधिकांश देशों की तुलना में कम है- जीडीपी का 1.29 प्रतिशत (2019-20)। लगभग 50-60 मिलियन भारतीय स्वास्थ्य संबंधी मुद्दों को वित्तपोषित करने में असमर्थता के कारण गरीबी में डूब जाते हैं क्योंकि भारत में सबसे अधिक आउट-ऑफ-पॉकेट स्वास्थ्य सेवा है। जब स्वास्थ्य पर सरकारी खर्च की बात आती है तो भारत 191 देशों में 176वें स्थान पर है, जबकि स्वास्थ्य पर जेब से खर्च करने के मामले में 191 देशों में भारत 182वें स्थान पर है। अस्पताल में रहने के दौरान अस्पताल में भर्ती होने के मामले में उपचार के लिए औसत आउट-ऑफ-पॉकेट चिकित्सा व्यय शहरी क्षेत्र में 22,031 रुपये है जबकि ग्रामीण क्षेत्र में 15,937 रुपये है। ग्रामीण परिवार मुख्य रूप से अस्पताल में भर्ती होने पर खर्च के वित्तपोषण के लिए अपनी घरेलू आय/बचत (80 प्रतिशत) और उधार (13 प्रतिशत) पर निर्भर थे।

पब्लिक हेल्थ फाउंडेशन ऑफ इंडिया के अध्ययन के अनुसार किफायती अस्पतालों की कमी, डॉक्टर की कमी, खराब उपकरण वाले स्वास्थ्य पेशेवर, नकली और महंगी दवाएं, एंटीबायोटिक प्रतिरोध, बचपन में कुपोषण, महिलाओं के स्वास्थ्य की उपेक्षा और धन की कमी भारतीय स्वास्थ्य क्षेत्र को प्रभावित कर रहे हैं। खासतौर पर कॉरपोरेट अस्पतालों में इलाज का बढ़ता खर्च नागरिकों का जीना दूभर कर रहा है। कर्ज के जाल में फंसने के डर से लोग बीमार पड़ने से डरते हैं। देश में मौजूदा सार्वजनिक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल मॉडल का दायरा काफी सीमित है। ऐसे स्थानों पर जहां सार्वजनिक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र मौजूद हैं, वहां भी केवल गर्भावस्था देखभाल, सीमित चाइल्डकेयर और राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों से संबंधित कुछ सेवाएँ ही प्रदान की जाती हैं।

कोविड महामारी ने भारत की स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की गहरी कमजोरियों को भी उजागर किया है। कोविड-19 की दूसरी लहर के आगमन के साथ स्थिति और खराब हो गई है। उस दौरान हमारी स्वास्थ्य प्रणाली सचमुच चरमरा गई थी। स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार की गारंटी देने वाले वैधानिक ढांचे की अनुपस्थिति को भारत में कमजोर सार्वजनिक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण कारणों में से एक माना जाता है। स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने की मांग नीति-निर्माताओं सहित कई क्षेत्रों से एक बार फिर उठी रही है। सार्वभौमिक स्वास्थ्य सेवा प्रणाली की प्राप्ति केवल स्वास्थ्य देखभाल के अधिकार को एक प्रवर्तनीय और न्यायोचित अधिकार बनाकर ही

प्राप्त की जा सकती है। अन्य अधिकारों की तरह स्वास्थ्य के अधिकार में भी स्वतंत्रता एवं पात्रता दोनों घटक शामिल हैं। स्वतंत्रता में स्वयं के स्वास्थ्य और शरीर को नियंत्रित करने का अधिकार (उदाहरण के लिये यौन एवं प्रजनन अधिकार) तथा हस्तक्षेप से मुक्ति का अधिकार शामिल है (उदाहरण के लिये यातना एवं गैर-सहमति चिकित्सा उपचार और प्रयोग से मुक्ति)। 'पात्रता' के तहत स्वास्थ्य सुरक्षा की एक प्रणाली का अधिकार शामिल है, जो सभी को स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य स्तर का लाभ प्राप्त करने का अवसर देता है। लोग स्वास्थ्य के अधिकार हेतु पात्र हैं और यह सरकार को इस दिशा में कदम उठाने के लिये मजबूर करता है। यह सभी को सेवाओं तक पहुँच प्राप्त करने में सक्षम बनाता है और यह सुनिश्चित करता है कि उन सेवाओं की गुणवत्ता आम लोगों के स्वास्थ्य में सुधार करने हेतु पर्याप्त है। यह स्वास्थ्य सेवाओं हेतु लोगों को अपनी जेब से भुगतान करने के वित्तीय परिणामों से बचाता है और लोगों के गरीबी में धकेले जाने के जोखिम को कम करता है।

भारत में स्वास्थ्य के अधिकार का संवैधानिक प्रावधान

भारत का संविधान स्पष्ट रूप से स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार की गारंटी नहीं देता है। हालांकि, संविधान में सार्वजनिक स्वास्थ्य और नागरिकों को स्वास्थ्य देखभाल के प्रावधान में राज्य की भूमिका के कई संदर्भ हैं। मौलिक अधिकारों के अंतर्गत भारतीय संविधान का अनुच्छेद-21 जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की गारंटी देता है। स्वास्थ्य का अधिकार गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार में निहित है। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत अनुच्छेद 38, 39, 42, 43 और 47 स्वास्थ्य के अधिकार की प्रभावी प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिये राज्य का दायित्व निर्धारित करते हैं। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांतों के माध्यम से संविधान ने राज्य को एक सभ्य जीवन स्तर प्रदान करने के लिए एक सशक्त अपील की है।

कई कानूनी उदाहरणों ने तय किया है कि राज्य नागरिकों की स्वास्थ्य देखभाल के लिए जिम्मेदार है। भारत के संविधान के भाग IV में राज्य नीति के निदेशक सिद्धांत स्वास्थ्य के अधिकार के लिए एक आधार प्रदान करते हैं। अनुच्छेद 39 (ई) राज्य को श्रमिकों के स्वास्थ्य को सुरक्षित करने का निर्देश देता है। अनुच्छेद 42 राज्य को काम की उचित और मानवीय स्थितियों और मातृत्व राहत का निर्देश देता है। अनुच्छेद 47 लोगों के पोषण स्तर और जीवन स्तर को बढ़ाने के लिए और सार्वजनिक स्वास्थ्य में सुधार करने के लिए राज्य पर एक कर्तव्य डालता है। इसके अलावा, संविधान न केवल सार्वजनिक स्वास्थ्य को बढ़ाने के लिए राज्य को बाध्य करता है, बल्कि यह अनुच्छेद 243 जी (11वीं अनुसूची, प्रविष्टि) के तहत सार्वजनिक स्वास्थ्य को मजबूत करने के लिए पंचायतों और नगर पालिकाओं को भी अनुदान देता है। मौजूदा संवैधानिक गारंटी, कानूनी मिसालें और वैश्विक प्रतिबद्धताएं भारत में स्वास्थ्य के मौलिक अधिकार के लिए एक ठोस आधार बनाती हैं।

भारतीय संविधान का अनुच्छेद-21 जीवन एवं व्यक्तिगत स्वतंत्रता के मौलिक अधिकार की गारंटी देता है। स्वास्थ्य का अधिकार गरिमा के साथ जीवन जीने के अधिकार में निहित है। राज्य के नीति निदेशक सिद्धांत अनुच्छेद 38, 39, 42, 43 और 47 स्वास्थ्य के अधिकार की प्रभावी प्राप्ति सुनिश्चित करने के लिये राज्य का दायित्व निर्धारित करते हैं।

सुप्रीम कोर्ट के फैसले

संविधान के तहत स्वास्थ्य या स्वास्थ्य के अधिकार की कोई स्पष्ट मान्यता नहीं होने के कारण भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने बंधुआ मुक्ति मोर्चा बनाम भारत संघ और अन्य (1983) में अनुच्छेद 21 के तहत स्वास्थ्य के अधिकार की व्याख्या की, जो जीवन के अधिकार की गारंटी देता है। पंजाब राज्य और अन्य बनाम मोहिंदर सिंह चावला (1996) में शीर्ष अदालत ने फिर से पुष्टि की कि स्वास्थ्य का अधिकार जीवन के अधिकार के लिए मौलिक है और इसे रिकॉर्ड में रखा जाना चाहिए कि स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करना सरकार का संवैधानिक दायित्व है। 'पश्चिम बंगाल खेत मजदूर समिति मामले' (1996) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था कि एक कल्याणकारी राज्य में सरकार का प्राथमिक कर्तव्य लोगों के कल्याण को सुरक्षित करना है और इसके अलावा यह भी सरकार का दायित्व है कि वह लोगों को पर्याप्त चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करे। 'परमानंद कटारा बनाम भारत संघ' वाद (1989) में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया था कि प्रत्येक डॉक्टर चाहे वह सरकारी अस्पताल में हो या निजी अस्पताल में, अपने पेशेवर दायित्वों के तहत जीवन की रक्षा के लिये उत्तरदायी है। पंजाब राज्य और अन्य बनाम राम लुभया बग्गा (1998) में अदालत ने स्वास्थ्य सेवाओं को बनाए रखने के लिए राज्य की जिम्मेदारी का समर्थन किया। भारत के सर्वोच्च न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की पीठ जिसमें जस्टिस अशोक भूषण, आर सुभाष रेड्डी और एमआर शाह शामिल हैं, ने 2020 में कोविड-19 मामले की सुनवाई करते हुए कहा कि स्वास्थ्य का अधिकार भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत एक मौलिक अधिकार है। स्वास्थ्य के अधिकार में सस्ता इलाज शामिल है। इसलिए, यह राज्य का कर्तव्य है कि वह किफायती उपचार के लिए प्रावधान करे।

स्वास्थ्य का अधिकार और अंतरराष्ट्रीय दायित्व

स्वास्थ्य के अधिकार को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर एक मौलिक मानव अधिकार के रूप में भी मान्यता प्राप्त है। स्वास्थ्य का अधिकार पहली

बार डब्ल्यूएचओ संविधान (1946) में व्यक्त किया गया था जिसमें कहा गया है कि, 'स्वास्थ्य के उच्चतम प्राप्य मानक तक पहुँच प्रत्येक मनुष्य के मौलिक अधिकारों में से एक है।' भारत, संयुक्त राष्ट्र द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौम घोषणा (1948) के अनुच्छेद 25 का एक हस्ताक्षरकर्त्ता है। यह भोजन, कपड़े, आवास और चिकित्सा देखभाल तथा आवश्यक सामाजिक सेवाओं सहित मनुष्यों के स्वास्थ्य एवं कल्याण के लिये पर्याप्त जीवन स्तर का अधिकार प्रदान करता है। स्वास्थ्य के अधिकार की सबसे आधिकारिक व्याख्या आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक अधिकारों पर अंतरराष्ट्रीय अनुबंध (आईसीईएससीआर, 1966) के अनुच्छेद 12 में उल्लिखित है। स्वास्थ्य का अधिकार एक समावेशी अधिकार है, जिसका विस्तार न केवल समय पर और उचित स्वास्थ्य देखभाल तक है, बल्कि स्वास्थ्य के अंतर्निहित निर्धारकों तक भी है, जैसे कि सुरक्षित और पीने योग्य पानी और पर्याप्त स्वच्छता, स्वस्थ व्यावसायिक और पर्यावरण की स्थिति, और स्वास्थ्य तक पहुंच, संबंधित शिक्षा और जानकारी, जिसमें यौन और प्रजनन स्वास्थ्य भी शामिल है (आईसीईएससीआर का पैरा 11)। अंतरराष्ट्रीय कानूनी संधियों और सम्मेलनों के प्रति भारत की प्रतिबद्धता भी इसे, एक राज्य पार्टी के रूप में, पर्याप्त सार्वजनिक सेवाओं और सार्वभौमिक स्वास्थ्य देखभाल के न्यूनतम मानक को बढ़ाने और प्रदान करने के लिए बाध्य करती है।

15वें वित्त आयोग की सिफारिश

सितंबर 2019 में 15वें वित्त आयोग के तहत गठित स्वास्थ्य क्षेत्र पर एक उच्च स्तरीय समूह ने सिफारिश की थी कि स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित किया जाए। एचएलजी की रिपोर्ट के अनुसार भारत ने विश्व स्तर पर सभी क्षेत्रों में वर्षों से भारी प्रगति की है और अब स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करने का सही समय है, जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 21 के तहत गारंटीकृत जीवन के अधिकार से उत्पन्न होता है।

स्वास्थ्य के अधिकार के संबंध में, नेशनल हेल्थ पॉलिसी 2017 भविष्य में स्वास्थ्य को एक अधिकार के रूप में साकार करने के लिए एक सक्षम वातावरण बनाने के लिए सुनिश्चित वित्त पोषण आधारित दृष्टिकोण की वकालत करता है। स्वास्थ्य पर किसी भी अधिकार-आधारित दृष्टिकोण के लिए ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में बुनियादी ढांचे, स्वास्थ्य मानव संसाधन, और सुरक्षात्मक, उपचारात्मक और पुनर्वास संबंधी स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करने के लिए राज्य की क्षमताओं पर ध्यान देने की आवश्यकता होगी। स्वास्थ्य के मुद्दे, स्वास्थ्य क्षेत्र से परे स्वास्थ्य के अन्य सामाजिक निर्धारकों जैसे गरीबी, समता, साक्षरता, स्वच्छता, पोषण, पेयजल उपलब्धता आदि तक भी फैले हुए हैं। इसलिए, किसी भी अधिकार-आधारित दृष्टिकोण को अपनाने से पहले एक सक्षम वातावरण चाहिए। नेशनल हेल्थ पॉलिसी 2017 ने स्वास्थ्य विषय को राज्य सूची से समवर्ती सूची में स्थानांतरित करने की सिफारिश भी की। स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार घोषित करने की सिफारिश लागू होने से लोगों की पहुंच मजबूत होगी। वर्तमान में, 'सार्वजनिक स्वास्थ्य और स्वच्छता' का विषय, 'अस्पताल और औषधालय' भारत के संविधान की 7वीं अनुसूची की राज्य सूची के अंतर्गत आते हैं। हालाँकि, स्वास्थ्य को समवर्ती सूची में स्थानांतरित करने की बाद यह सवाल उठने लगा है कि क्या सार्वजनिक स्वास्थ्य का केंद्रीकरण भारतीय सहकारी संघवाद के संदर्भ में मददगार होगा।

सांसदों की मांग

इस साल संसद के मानसून सत्र में राकांपा की राज्यसभा सदस्य फौजिया खान ने स्वास्थ्य गारंटी कानून बनाने और सभी के लिए स्वास्थ्य सुविधाएं सुनिश्चित करने की मांग की थी। उन्होंने स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए एक मानक संचालन प्रक्रिया निर्धारित करने पर भी जोर दिया। कोविड-19 महामारी के आगमन से पहले वाईएसआर कांग्रेस के राज्यसभा सांसद वी विजयसाई रेड्डी ने स्वास्थ्य के अधिकार को मौलिक अधिकार बनाने के लिए 2017 में राज्यसभा में एक निजी सदस्य विधेयक पेश किया था। उन्होंने स्वास्थ्य के अधिकार को एक मौलिक अधिकार बनाने के लिए एक नया अनुच्छेद 21बी पेश करके संविधान में संशोधन का प्रस्ताव किया था। बिल में कहा गया है कि सभी नागरिकों को बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं, आपातकालीन चिकित्सा उपचार और मानसिक स्वास्थ्य सेवा तक मुफ्त पहुंच होनी चाहिए। राज्य सभी नागरिकों को स्वास्थ्य सुरक्षा की एक प्रणाली प्रदान करेगा, जिसमें बीमारियों की रोकथाम, उपचार और नियंत्रण और आवश्यक दवाओं तक पहुंच शामिल है।

लोग अक्सर स्वास्थ्य देखभाल को अपनी सरकारों से मिलने वाले अधिकार के रूप में देखते हैं। जाहिर तौर पर हेल्थकेयर सेक्टर एक बिजनेस सेक्टर बन गया है। सुविधाओं के अभाव और कर्मचारियों के लापरवाह रवैये के कारण लोग सरकारी अस्पतालों में जाने से हिचकते हैं। सरकारी अस्पतालों में जाने का विकल्प तभी चुनते हैं जब वे निजी अस्पताल में इलाज का खर्च नहीं उठा सकते। लोग सरकारी अस्पताल का विकल्प चुनने के बजाय निजी अस्पताल में जाने के लिए अपनी गाढ़ी कमाई से अर्जित संपत्ति तक बेच देते हैं। स्वास्थ्य गारंटी कानून बनाने और न्यायिक अधिकारों के माध्यम से सभी लोगों को स्वास्थ्य सुविधाओं के प्रावधान की गारंटी देने से लोगों के जीवन और कमाई की रक्षा तो होगी ही इससे स्वास्थ्य सेवा प्रदाताओं की जवाबदेही भी तय होगी।

स्वास्थ्य सेवा का अधिकार एक विस्तृत कैनवास को कवर करता है। जमीनी स्तर पर स्वास्थ्य अधिकारों के प्रभावी कार्यान्वयन को सुनिश्चित करने के लिए उत्कृष्ट स्वास्थ्य देखभाल प्रणाली की आवश्यकता है। स्वास्थ्य के अधिकार को तब तक प्राप्त नहीं माना जा सकता जब तक कि डॉक्टर-रोगी अनुपात, रोगी-बिस्तर अनुपात, नर्स-मरीज अनुपात, आदि जैसी बुनियादी स्वास्थ्य अधिसंरचना देश में समान रूप से न फैली हुई हो। यह सच है कि स्वास्थ्य क्षेत्र केवल स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे पर निर्भर नहीं है बल्कि इसमें कई संबद्ध क्षेत्र शामिल हैं, लेकिन स्वास्थ्य के अधिकार हेतु सक्षम वातावरण बनाने के लिए सरकार का अनंत काल तक इंतजार अनुचित है।

■

अंतरराष्ट्रीय बाल अधिकार समझौता; भारत के तीन दशक

संयुक्त राष्ट्र संघ की आम सभा द्वारा 20 नवम्बर 1989 को बाल अधिकार समझौते को पारित किया गया था और भारत सरकार ने 11 दिसम्बर 1992 को इस पर हस्ताक्षर कर अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त की थी. यह समझौता सभी बच्चों के अधिकारों को समग्रता से पहचान प्रदान करता है, जिसमें जीवन, विकास, सुरक्षा और सहभागिता का अधिकार शामिल है। 193 देशों ने इस समझौते पर हस्ताक्षर करते हुए बच्चों को जाति, धर्म, रंग, लिंग, भाषा, योग्यता आदि के आधार पर बिना किसी भेदभाव के संरक्षण देने की प्रतिबद्धता जताई है।

इस समझौते के आधार पर दुनिया भर में बाल अधिकार के दृष्टिकोण पर आधारित ढांचों व कार्यपद्धति को स्थापित किये गए हैं। भारत में भी बच्चों के पक्ष में उल्लेखनीय कानून, नीतियां और योजनाएं बनाई गयी हैं। 2013 में दूसरी राष्ट्रीय बाल नीति की घोषणा में कहा गया है कि सरकार बच्चों के समग्र और सामंजस्यपूर्ण विकास के लिए अधिकार आधारित दृष्टिकोण अपनाते हए दीर्घकालिक, टिकाऊ और समावेशी प्रयास करेगी। राष्ट्रीय बाल नीति-2013 में जीवन रक्षा, स्वास्थ्य और पोषण, शिक्षा और विकास व संरक्षण और भागीदारी को प्राथमिकता से शामिल किया गया। इसके बाद 24 जनवरी 2017 को बच्चों के लिए राष्ट्रीय कार्य योजना, 2016 की घोषणा की गई, जिसमें इन प्राथमिक उद्देश्यों के साथ ही सतत विकास लक्ष्यों (एसडीजी) को भी ध्यान में रखा गया।

अंतरराष्ट्रीय बाल अधिकार समझौते को अंगीकार करने के बाद तीन दशकों में कई स्थितियों में सुधार नजर आया है। जैसे भारत में बच्चों की शिक्षा तक पहुंच में काफी प्रगति हुई है। 1981 में साक्षरता दर 40.76 प्रतिशत थी जो 2018 में बढ़कर 74.37 प्रतिशत हो गई। हालांकि इस प्रगति के साथ ही कुछ निराशाएं भी हाथ लगी हैं। हमारी सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली और शिक्षा की गुणवत्ता में निरंतर गिरावट देखी जा रही है। ऐसा लगता है कि हमारी सरकारों की प्राथमिकता में सिर्फ साक्षरता है, गुणवत्तापूर्ण शिक्षा नहीं। 1994 में कुल जीडीपी का 4.34 प्रतिशत शिक्षा पर खर्च किया जाता था जो आज घट कर 3.1 प्रतिशत रह गया है।

इन तीन दशकों में बाल मृत्युदर में भी सुधार देखने को मिला है। संयुक्त राष्ट्र की बाल मृत्यु दर में स्तर और रुझान रिपोर्ट 2020 के अनुसार 1990 में पांच साल से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर (प्रति 1000 पर) 126 थी, जो 2019 में घटकर केवल 34 रह गई।

बच्चों के खिलाफ अपराध के मामले में आंकड़े चौंकाने वाले हैं। राष्ट्रीय अपराध रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के मुताबिक पिछले डेढ़ दशक में बच्चों के खिलाफ अपराध के मामले 1.8 से बढ़कर 28.9 प्रतिशत हो गए हैं. 2001 में छः वर्ष तक के बालक-बालिकाओं का लिंगानुपात 927 था, 2011 की जनगणना में यह अनुपात 914 हो गया।

संयुक्त राष्ट्र का अनुमान है कि कोरोना संक्रमण और इसके प्रभावों के चलते दुनिया भर में करीब 42 से 66 मिलियन बच्चे अत्यधिक गरीबी की दिशा में धकेले जा सकते हैं। भारत में भी महामारी के कारण बच्चों की औपचारिक शिक्षा पर बुरा असर पड़ा है और मिड डे मील में अवरोध के कारण उनके पोषण पर असर पड़ा है। स्कूल से ड्रापआउट में भी वृद्धि हुई है, जिसका असर है कि राष्ट्रीय बाल श्रम परियोजना के मुताबिक 2019-20 से 2020-21 के बीच बाल श्रमिकों की संख्या में 6 प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हुई है। इसके अलावा नयी शिक्षा नीति में ऑनलाइन शिक्षा के टूल्स को बढ़ावा देने की बात कही गई है, जिसमें गरीब परिवारों के बच्चों का छूट जाना शंका से परे नहीं है। पढ़ाई का छूटना लड़कियों के लिए एक और चुनौती खड़ी करता है। चाइल्डलाइन के आंकड़ों के अनुसार 2020 में अप्रैल से अक्टूबर के बीच चाइल्डलाइन को बाल विवाह से सम्बंधित 18,324 डिस्ट्रेस कॉल किए गए थे। कोविड19 का बच्चों के मानसिक स्वास्थ्य पर भी गहरा प्रभाव देखने को मिला है। एक सर्वेक्षण के मुताबिक किशोर उम्र के बच्चे पहले के मुकाबले अधिक चिंतित, क्रोधित, निराश और उदास महसूस करने लगे हैं।

कहा जा सकता है कि पिछले 30 सालों में बहुत कुछ सकारात्मक बदलाव आया है लेकिन अंतरराष्ट्रीय बाल अधिकार समझौते के उद्देश्य अभी भी प्रासंगिक हैं। कुछ स्थितियां पहले से बेहतर स्थिति में आई हैं तो कुछ नई स्थानीय से लेकर वैश्विक चुनौतियां भी खड़ी हुई हैं। जाहिर है इन तीन दशकों में बच्चों के अधिकारों की सुरक्षा के अपने कार्य के आकलन के साथ, नयी चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए आगे बढ़ने की जरूरत हमें आज भी है। ■

समस्तीपुर, जमुई और बांका में महिला बीड़ी कामगारों से परामर्श

महिला बीड़ी श्रमिकों के साथ उनकी मानवाधिकार स्थितियों और जीवन की स्थिति में सुधार की संभावनाओं की दृष्टि से मध्य प्रदेश के जबलपुर और बिहार के जमुई, बांका और समस्तीपुर जिलों में बीड़ी श्रमिकों के परिवारों का बेसलाइन सर्वेक्षण पैरवी द्वारा किया गया, ताकि बीड़ी श्रमिकों की जीवन स्थितियों, आजीविका की स्थितियों, बुनियादी जरूरतों तक पहुंच और सामाजिक सुरक्षा लाभों का अनुभवजन्य रूप से निरीक्षण कर दस्तावेज तैयार किया जा सके। इस सर्वेक्षण के बाद महिला बीड़ी श्रमिकों के साथ विचार-विमर्श किया गया ताकि उनके साथ मिलकर आगे हस्तक्षेप करने की योजना बनाई जा सके।

3 दिसंबर को समस्तीपुर में जवाहर ज्योति बाल विकास केंद्र के साथ अख्तियारपुर गांव में बैठक आयोजित की गई, जिसमें 30 महिलाओं ने चर्चा में भाग लिया। इनमें ज्यादातर महिलाएं अल्पसंख्यक समुदाय से थीं। महिलाओं ने अपनी चिंताओं और आकांक्षाओं को व्यक्त किया। सामाजिक सुरक्षा लाभ प्राप्त करने के लिए उन्हें अनौपचारिक श्रमिक के रूप में पंजीकृत करने के लिए शिविर आयोजित करने का निर्णय लिया गया है। लोक विकास संस्थान के साथ क्रमशः 6 दिसंबर और 7 दिसंबर को गोरसोटी गांव, जमुई और चांदन गांव, बांका में बैठकें आयोजित की गईं। इन जिलों में 50 से अधिक महिलाओं ने भाग लिया। बांका और जमुई की इन सभी महिलाओं को पैरवी और लोक विकास संस्थान द्वारा आयोजित कैंपों में लेबर कार्ड पहले ही जारी किए जा चुके हैं। अब उनकी आजीविका सुनिश्चित करने और उनके काम को व्यावसायिक रूप से टिकाऊ बनाने के लिए महिला बीड़ी श्रमिकों की एक सहकारी समिति विकसित करने पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा है।

बीज मेला और अन्य गतिविधियां

पैरवी द्वारा एफएओ-आईटीपीजीआर समर्थित परियोजना के तहत पूर्वी और मध्य भारत के जनजातीय इलाकों के चावल परती क्षेत्रों में दलहन जैव विविधता में सुधार पर कई गतिविधियों का आयोजन किया गया। इसके तहत मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, बिहार, झारखण्ड और पश्चिम बंगाल राज्यों में भागीदार अक्टूबर से दिसंबर के दौरान चावल के परती मौसम में दलहन/तिलहन की खेती कर रहे हैं। इस परियोजना के तहत मध्य प्रदेश में 12 नवंबर, पश्चिम बंगाल में 28 नवंबर, बिहार में 12 दिसंबर, छत्तीसगढ़ में 15 दिसंबर को बीज मेले आयोजित किए गए। झारखंड में 19 दिसंबर को बीज मेले का आयोजन किया जाएगा।

किशोरियों को सशक्त बनाने के लिए एडवोकेसी प्रशिक्षण

पैरवी ने 12 से 14 नवंबर को अम्बेडकर नगर में पानी, उत्तर प्रदेश के युवा समूह के लिए एडवोकेसी प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला स्वास्थ्य, पोषण और शिक्षा पर 16-19 आयु वर्ग की युवा लड़कियों के प्रशिक्षण पर केंद्रित थी। युवा कार्यकर्ताओं को एडवोकेसी की मूल बातें, समुदाय के नेतृत्व वाली एडवोकेसी, एडवोकेसी में जानकारी के महत्व को समझने और सामुदायिक स्तर पर एडवोकेसी योजना तैयार करने के लिए स्पष्ट समझ विकसित करने हेतु प्रशिक्षण दिया गया। का

किशोर न्याय प्रणाली पर परामर्श: जेल में बच्चे और अभिभावक

इसी मुद्दे पर पिछले परामर्श के बाद 22 नवंबर को फॉलोअप परामर्श का आयोजन पटना में किया गया। प्रो संजय पासवान, एमएलसी और समन्वयक, जेल सुधार समिति बिहार विधान परिषद, निशा झा, पूर्व अध्यक्ष, राज्य बाल अधिकार संरक्षण आयोग, बिहार, मुख्तारुल हक, बचपन बचाओ आंदोलन, संतोष उपाध्याय, बंदी अधिकार आंदोलन, सुनील झा बाल अधिकार कार्यकर्ता , प्रवीण कुमार, लॉ फाउंडेशन, बिहार, संतोष कुमार, एडवोकेट पटना हाईकोर्ट और कई अन्य प्रमुख कार्यकर्ताओं और सीएसओ ने परामर्श में भाग लिया। इस मुद्दे पर निरंतर एडवोकेसी अभियान चलाने और आईजी जेल श्री मिथिलिश मिश्रा से मिलने के लिए एक प्रतिनिधिमंडल बनाने का निर्णय लिया गया। दीनबंधु वत्स ने पैरवी की ओर से परामर्श का संचालन किया।

■

संपादक मंडलः **प्रो. संजय भट्ट, अजय के. झा**
पैरवी के-8, तीसरा तल, लाजपत नगर-3, नई दिल्ली-110024 द्वारा सीमित प्रसार के लिए प्रकाशित
संपर्क - फोनः 011-29841266, 46101652 | ईमेलः pairvidelhi1@gmail.com, info@pairvi.org | वैबसाइटः www.pairvi.org